RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452 Raaso
Refreed Journal

रासो

अन्तर्विषयी त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-17, अंक-4, सितम्बर अक्टूबर नवम्बर 2024

रासो
त्रैमासिक शोध पत्रिका
2005
॥ स्वस्ति पन्थामनु चरेम ॥

RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452Raaso
Refreed Journal

रासो

इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं दर्शन की त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-17 अंक - 4 सितम्बर-अक्टूबर-नवम्बर-2024

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

निदेशक
कॉम्पिटिशन प्लस संस्थान, ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन्स, अजमेर (राजस्थान)

संरक्षक

* **प्रो. जे. पी. शर्मा** - पूर्व कुलपति, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

सलाहकार मण्डल

* **प्रो. विभा उपाध्याय** – प्रोफेसर, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
* **नर्मदा प्रसाद उपाध्याय** – प्रसिद्ध साहित्यकार तथा संस्कृति चिंतक, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
* **प्रो. टी.के. माथुर** – पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.)
* **डॉ. रमेश अग्रवाल** – पूर्व स्थानीय सम्पादक, दैनिक भास्कर, अजमेर (राजस्थान)
* **डॉ. गौरव बिस्सा** – सहआचार्य, विभागाध्यक्ष, प्रबंध अध्ययन विभाग, राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
* **डॉ. बीना शर्मा** – पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सावित्री कन्या महाविद्यालय, अजमेर
* **प्रो. शोभा आर. मिश्रा** – आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन
* **डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी** – पूर्व सहायक निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली।

☆ उप सम्पादक
डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. मृत्युंजय शर्मा
सह-आचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ सहायक सम्पादक
डॉ. निष्काम शर्मा

☆ शब्द संयोजन
मुकेश कुमार माहेश्वरी

☆ सम्पादकीय/सचिव
व्यवस्थापकीय कार्यालय
सृजन संस्थान,
आचमन, वेद विहार,
लोहाखान, अजमेर-06
दूरभाष : 0145-2426610
e-mail : rasoajmjournal@gmail.com

☆ प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
सृजन संस्थान,
द्वारा आचमन पब्लिकेशन्स,
अजमेर

☆ मुद्रक :
मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स,
केसरगंज, अजमेर

☆ कम्प्यूटराइज्ड सेटिंग :
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स
132, पंचवटी कॉलोनी,
अजमेर दूरभाष : 0145-2442701

सहयोग दर

* वार्षिक सदस्यता - 500 रु. (चार अंक) संस्थाओं हेतु - 600 रु. (चार अंक)
कृपया चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर श्रीमती पुष्पा शर्मा, प्रकाशक, आचमन पब्लिकेशन्स, अजमेर- 305006 के नाम भेजें।

प्रकाशक-श्रीमती पुष्पा शर्मा, 51/1509, वेद विहार, लोहाखान, अजमेर द्वारा मैसर्स सृजन संस्थान, अजमेर की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रक-श्रीमती उषा गर्ग द्वारा मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स, केसरगंज, अजमेर से मुद्रित।

वैदिक काल में नारी की स्थिति और उसके शिक्षा एवं अन्य अधिकारों के प्रावधानों की विवेचना

डॉ. मृत्युंजय शर्मा
सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

वैदिक सभ्यता में नारी को केवल पारिवारिक इकाई का अंग नहीं, बल्कि सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन की मूल धुरी के रूप में स्वीकार किया गया था। वेदों में नारी का स्वरूप अत्यन्त गरिमामय, सम्मानित और अधिकारसम्पन्न दिखाई देता है। परिवार, समाज और यज्ञीय परम्परा—तीनों में उसकी उपस्थिति अनिवार्य मानी गई है। माता-पिता के लिए पुत्री उतनी ही प्रिय और सम्माननीय थी जितना पुत्र, और यही दृष्टि वैदिक समाज की समतामूलक चेतना को प्रतिबिम्बित करती है।

वेदों में नारी को पवित्र देवी के समान माना गया है। वह केवल संतान उत्पन्न करने वाली नहीं, बल्कि कुल, गृह और संस्कृति की वाहिका थी। संतान-प्राप्ति हेतु देवताओं से की जाने वाली प्रार्थनाओं में पुत्र और पुत्री—दोनों की समान रूप से कामना की गई है। इससे यह स्पष्ट होता है कि वैदिक आर्य समाज में पुत्री की उपेक्षा नहीं थी। 'पुत्र' शब्द का प्रयोग अनेक स्थलों पर संतान के सामान्य अर्थ में हुआ है, जिसमें पुत्री का भी समावेश स्वाभाविक रूप से माना गया है। इस प्रकार भाषा और भाव—दोनों स्तरों पर नारी के प्रति सम्मान दृष्टिगोचर होता है।

वैदिक युग में नारी को घर की आत्मा और प्राण के रूप में स्वीकार किया गया। गृहस्थ आश्रम की सफलता पत्नी के बिना असम्भव मानी गई है। ऋग्वेद में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि 'जाया' ही घर है—अर्थात् पत्नी के बिना घर की कल्पना अधूरी है। इससे यह सिद्ध होता है कि नारी केवल सहचरी नहीं, बल्कि गृह की केन्द्रबिन्दु थी। पति और पत्नी का सम्बन्ध स्वामी-सेविका का नहीं, बल्कि सहधर्मिणी का था, जहाँ दोनों मिलकर यज्ञ, व्रत और सामाजिक दायित्वों का निर्वहन करते थे।

ऋग्वेद में नारी के लिए प्रयुक्त विभिन्न शब्द—जाया, जनि, जनी और पत्नी—उसके विविध सामाजिक और पारिवारिक रूपों को स्पष्ट करते हैं। 'जाया' से उसका सन्तानोत्पादक और गृह-निर्मात्री स्वरूप प्रकट होता है, 'पत्नी' से सहधर्मिणी का भाव, जबकि 'जनि' और 'जनी' शब्दों में उसकी सृजनात्मक और जीवनदायिनी शक्ति निहित है। 'वधू' शब्द विवाह के अवसर पर प्रयुक्त होकर नारी के सम्मानजनक सामाजिक प्रवेश को सूचित करता है। 'नारी' और 'स्त्री' शब्द प्राय: विवाहिता के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं, किन्तु कुछ स्थलों पर नारी शब्द सामान्य अर्थ में भी आया है, जहाँ वह 'नर' के साथ युग्म रूप में प्रयुक्त होकर समाज में स्त्री-पुरुष की समान उपस्थिति को दर्शाता है।

शोध-पत्र में उल्लिखित सन्दर्भ एवं विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

शिक्षा के क्षेत्र में भी वैदिक नारी की स्थिति उल्लेखनीय थी। वैदिक काल में स्त्रियों के लिए शिक्षा निषिद्ध नहीं थी। अनेक स्त्रियाँ वेदाध्ययन, ब्रह्मविद्या और दार्शनिक चिन्तन में निपुण थीं। घोषा, लोपामुद्रा, अपाला, गार्गी और मैत्रेयी जैसी विदुषियों के उदाहरण यह प्रमाणित करते हैं कि नारी को बौद्धिक स्वतंत्रता और आध्यात्मिक उन्नति का पूर्ण अधिकार था। उपनिषदों में गार्गी और याज्ञवल्क्य का संवाद नारी की दार्शनिक क्षमता और बौद्धिक प्रतिष्ठा का सर्वोत्तम उदाहरण है। इससे यह सिद्ध होता है कि वैदिक समाज में शिक्षा केवल पुरुषों तक सीमित नहीं थी, बल्कि योग्य स्त्रियाँ भी उच्चतम ज्ञान प्राप्त कर सकती थीं।

धार्मिक अधिकारों की दृष्टि से नारी को यज्ञों में सहभागी बनने का पूर्ण अधिकार प्राप्त था। पति के साथ मिलकर वह यज्ञ करती थी और अनेक धार्मिक अनुष्ठानों में उसकी उपस्थिति अनिवार्य मानी जाती थी। 'अर्धांगिनी' की अवधारणा इसी समन्वय का द्योतक है। नारी के बिना धार्मिक कृत्य अधूरे माने जाते थे, जिससे उसकी धार्मिक महत्ता और अधिकारों की पुष्टि होती है।

सामाजिक दृष्टि से वैदिक नारी को सम्मान, सुरक्षा और सहभागिता प्राप्त थी। विवाह प्रायः सहमति और योग्यता पर आधारित होता था। कन्या को पति चयन का अधिकार प्राप्त होने के भी संकेत मिलते हैं। विधवा, परित्यक्ता या असहाय नारी के प्रति समाज का दृष्टिकोण करुणामय और संरक्षणकारी था। नारी को अपमानित या उत्पीड़ित करना अधार्मिक और सामाजिक अपराध माना जाता था।

वैदिक साक्ष्यों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि वैदिक समाज में पुत्री की भूमिका केवल पारिवारिक परिधि तक सीमित नहीं थी, बल्कि वह जाति एवं वंश-परम्परा को अक्षुण्ण बनाए रखने में पुत्र के समान ही सहयोगी मानी जाती थी। यद्यपि व्यवहारिक स्तर पर पुत्र को वंश-परम्परा का प्रधान वाहक समझे जाने के कारण उसका महत्व अपेक्षाकृत अधिक था, तथापि यह अंतर पुत्री के प्रति उपेक्षा का द्योतक नहीं था। ऋग्वैदिक मन्त्रों से यह संकेत मिलता है कि पुत्र और पुत्री—दोनों ही कुल की प्रतिष्ठा, सामाजिक निरन्तरता और पारिवारिक मर्यादाओं के संरक्षण में सहायक माने जाते थे।

आर्य समाज में कन्याएँ अत्यन्त प्रिय थीं। उनकी प्राप्ति को सौभाग्य का प्रतीक माना जाता था और सुंदर, सुशील तथा गुणसम्पन्न कन्याओं के लिए देवताओं, विशेषतः पुषा देवता, से प्रार्थनाएँ की जाती थीं। यह तथ्य इस बात का प्रमाण है कि कन्या को बोझ नहीं, बल्कि ईश्वरीय अनुग्रह के रूप में देखा जाता था। कन्याओं के प्रति यह सम्मान इतना गहन था कि उन्हें पवित्र देवी के समान माना गया। पुत्र के अभाव में दौहित्र को सम्पत्ति का अधिकारी बनाना इस बात का स्पष्ट संकेत है कि कन्या-सन्तान के माध्यम से भी वंश और सम्पत्ति की निरन्तरता स्वीकार्य थी। यह व्यवस्था वैदिक समाज की लचीली और मानवीय दृष्टि को उजागर करती है।

कन्या के भरण-पोषण, संरक्षण और विवाह का दायित्व पिता पर तथा उसके अभाव में भ्राता पर माना गया। यह दायित्व केवल आर्थिक नहीं, बल्कि सामाजिक और नैतिक भी था। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में माता की गोद में शयन करती हुई दो बहिनों का वर्णन माता-पिता के वात्सल्य और कन्या-प्रेम को अत्यन्त मार्मिक रूप में प्रस्तुत करता है। यह दृश्य वैदिक परिवार में कन्या के प्रति स्नेह, सुरक्षा और अपनत्व की भावना को सशक्त रूप से अभिव्यक्त करता है। यद्यपि कुछ स्थलों पर बहन की कामना अपेक्षाकृत कम दिखाई देती है, इसका कारण यह नहीं था कि कन्या अवांछित थी, बल्कि सामाजिक यथार्थ यह था कि

विवाह के पश्चात् वह अन्य कुल में चली जाती थी। इस कारण पुत्र को वंश-परम्परा की दृष्टि से अधिक महत्व दिया गया, किन्तु इससे कन्या के मान-सम्मान में कोई मूलभूत कमी नहीं आती।

वेद भारतीय संस्कृति के अक्षय आधार हैं और उनमें निहित नारी-चिन्तन अत्यन्त उदात्त, समन्वयकारी और मानवीय है। वैदिक नारी का स्वरूप केवल पारिवारिक कर्तव्यों तक सीमित न होकर सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों से सम्पन्न दिखाई देता है। वह कर्तव्यपरायण, स्नेहशील, यशस्विनी और गरिमामयी है। वेदों में नारी को 'देवी' कहा गया है और इस देवीत्व को केवल अलंकारिक नहीं, बल्कि गुणात्मक आधार प्रदान किया गया है। ऋग्वेद में देवी के जो विशेषण दिए गए हैं—ऋत को बढ़ाने वाली, महिमामयी, पवित्र करने वाली, सबके लिए वांछनीय, दुरितों का नाश करने वाली तथा अनासक्त—वे नारी के आदर्श स्वरूप को स्पष्ट करते हैं।

इस वैदिक दृष्टि के अनुसार वही नारी 'देवी' है जो सत्यनिष्ठ, सदाचारिणी, ज्ञानवती, प्रकाशस्वरूपा, पावन स्वभाव की तथा सुव्यवस्था स्थापित करने में सक्षम हो। साथ ही, उसका भोग-विलास से अनासक्त होना उसे आत्मसंयमी और सामाजिक कल्याण की दिशा में उन्मुख बनाता है। ऐसी नारियाँ ही देवताओं—अर्थात् दिव्य गुणों से युक्त श्रेष्ठ जनों—को प्रिय होती हैं और उनके माध्यम से समाज का सर्वांगीण कल्याण एवं उन्नति सम्भव होती है।

वेदों में प्रतिपादित नारी-जीवन अत्यन्त पवित्र, श्लाघ्य, सौन्दर्यपूर्ण और गौरवशाली है। वैदिक साहित्य में नारी के चरित्र अथवा जीवन पर किसी प्रकार की हीनता, कलुषता या अवमानना का लेशमात्र भी दृष्टिगोचर नहीं होता। वैदिक नारी का स्वरूप आदर्श गुणों से अलंकृत है—वह शिष्टाचार सम्पन्न, साध्वी, विनम्र, शीलवती और तेजस्विनी है। उसके व्यक्तित्व में लक्ष्मी का सौभाग्य, मेधा की प्रखरता, श्रद्धा की दृढ़ता और तप की गरिमा समाहित है। वह केवल गृहस्थ जीवन की मर्यादा तक सीमित नहीं, बल्कि संकल्पनिष्ठ, व्रतनिष्ठ और धर्मनिष्ठ होकर सामाजिक एवं राष्ट्रीय दायित्वों का भी निर्वहन करती है। इसी के साथ-साथ वैदिक नारी का रूप केवल कोमलता तक सीमित नहीं है; उसमें शौर्य, वीरता और संघर्षशीलता भी निहित है। वह वीरों को जन्म देने वाली, विजयोन्मुख, अधर्म और पाप के विनाश में समर्थ तथा दैत्य-दल का विनाश करने वाली शक्ति के रूप में भी प्रतिष्ठित है। नारी के इसी सर्वांगीण और दिव्य स्वरूप के कारण वेद ने उसे 'ब्रह्मा' की सर्वोच्च उपाधि प्रदान की है, जो उसके आध्यात्मिक, बौद्धिक और नैतिक उत्कर्ष का द्योतक है।

ऋग्वेद में कन्या के प्रति उपेक्षा भाव का कोई भी उदाहरण नहीं मिलता। इसके विपरीत, यज्ञ करने वाले दम्पत्ति की प्रशंसा इस आधार पर की गई है कि वे पुत्र और पुत्रियों—दोनों से सम्पन्न होकर दीर्घायु को प्राप्त होते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि पुत्री को भी कुल की पूर्णता और समृद्धि का अनिवार्य अंग माना गया। वैदिक काल में कन्याओं को पर्याप्त स्वतंत्रता प्राप्त थी। वे बिना किसी सामाजिक बन्धन के एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमन कर सकती थीं और उत्सवों, यज्ञों तथा सामाजिक आयोजनों में निर्भय होकर भाग लेती थीं। यह स्वतंत्रता केवल शारीरिक आवागमन तक सीमित नहीं थी, बल्कि विचार, आचरण और सहभागिता के स्तर पर भी विद्यमान थी।

वैदिक समाज में स्त्रियों को अत्यन्त महत्वपूर्ण और प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था। सामाजिक, धार्मिक और बौद्धिक—तीनों क्षेत्रों में उनकी स्थिति पुरुषों के समान मानी जाती थी। पुरुषों की भाँति स्त्रियों का भी

उपनयन संस्कार होता था और वे ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवेश कर वेद, ब्रह्मविद्या, संस्कृति और आध्यात्मिक ज्ञान का गहन अध्ययन करती थीं। इस काल में अनेक विदुषी स्त्रियों का उल्लेख मिलता है जिन्होंने ऋग्वेद की ऋचाओं का स्वयं प्रणयन किया। लोपामुद्रा, घोषा, अपाला, विश्वधारा, काक्षीवती, सिकता, निवावरी, रोमशा और उर्वशी जैसी ऋषिकाएँ वैदिक नारी की बौद्धिक क्षमता और सृजनशीलता का सशक्त प्रमाण हैं। यह तथ्य यह सिद्ध करता है कि शिक्षा और ज्ञान के क्षेत्र में नारी किसी भी प्रकार से पुरुष से कम नहीं थी।

याज्ञिक कर्मकाण्डों में भी स्त्रियाँ अग्रणी भूमिका निभाती थीं। वे केवल सहधर्मिणी के रूप में नहीं, बल्कि विधिवत् अनुष्ठान की जानकार और सहभागी के रूप में प्रतिष्ठित थीं। उपनिषदकाल में भी नारी की यह बौद्धिक परम्परा अक्षुण्ण रही। बृहदारण्यक उपनिषद में विदेह नरेश जनक की राजसभा में गार्गी और याज्ञवल्क्य के मध्य हुआ शास्त्रार्थ वैदिक-उपनिषदिक युग में नारी की दार्शनिक प्रखरता का अद्वितीय उदाहरण है। गार्गी ने अपने गूढ़ और तात्त्विक प्रश्नों से याज्ञवल्क्य जैसे महाज्ञानी को भी मौन कर दिया था। इसी प्रकार मैत्रेयी, जो याज्ञवल्क्य की पत्नी थीं, एक उच्च कोटि की ब्रह्मवादिनी थीं और उन्होंने आत्मज्ञान तथा ब्रह्मतत्त्व पर गम्भीर चिन्तन प्रस्तुत किया।

ऋग्वैदिक साहित्य से स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में कन्या पारिवारिक जीवन के साथ-साथ आर्थिक और सामाजिक कार्यों में भी सक्रिय भूमिका निभाती थी। ऋग्वेद में कन्या अपाला का उल्लेख मिलता है, जो अपने पिता के कृषि कार्यों में सहयोग करती थी। इसी प्रकार गाय दुहना, दही-मक्खन बनाना, कूपों से जल लाना और पशुओं की देख-रेख जैसे कार्य कन्याओं द्वारा किए जाते थे। 'दुहिता' शब्द का प्रयोग भी कन्या की इस श्रमशील भूमिका को सूचित करता है, जिससे उसकी उपयोगिता और सम्मान का बोध होता है।

वैदिक युग की सामाजिक संरचना और भावनात्मक दृष्टि उत्तरवर्ती सूत्र-युग से भिन्न थी। उस काल में नारी को अधिक सहज, स्वतंत्र और सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त था। स्त्रियों के सत्कार को परिवार और समाज की समृद्धि से जोड़ा गया है; जहाँ नारी का सम्मान होता है, वहाँ समस्त कर्म सफल माने जाते हैं।

विवाह के संदर्भ में वैदिक काल की कन्या को परिपक्व अवस्था में विवाह का अधिकार था। ऋग्वेद में स्वयं वर-चयन के उल्लेख मिलते हैं, जो उसकी बौद्धिक स्वतंत्रता और विवेकशीलता को दर्शाते हैं। कन्याएँ ब्रह्मचर्याश्रम में रहकर शिक्षा ग्रहण करती थीं और यौवन-प्राप्ति के बाद ही गृहस्थाश्रम में प्रवेश करती थीं। अथर्ववेद का मंत्र 'ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्' इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि विद्या और ब्रह्मचर्य के माध्यम से कन्या अपने योग्य पति को प्राप्त करती थी।

वेदों में नारी शिक्षा :

वेदों में नारी-शिक्षा का स्वरूप अत्यन्त उन्नत और व्यावहारिक दिखाई देता है। वैदिक युग में कन्याएँ उच्च शिक्षा ग्रहण करती थीं और अनेक कन्याएँ अविवाहित रहकर पिता के घर में ही जीवन व्यतीत करती हुई वृद्धावस्था को प्राप्त होती थीं। ऐसी कुमारी कन्याओं की स्थिति विवाहित स्त्रियों से भिन्न थी। विवाहित कन्याएँ पाणिग्रहण के समय पिता से 'वहतु' के रूप में पर्याप्त सम्पत्ति प्राप्त करती थीं और विवाहोपरान्त पतिगृह में भी स्त्रीधन की अधिकारी होती थीं। इस प्रकार, वे पैतृक सम्पत्ति की प्रत्यक्ष उत्तराधिकारी न होते हुए भी आर्थिक रूप से सुरक्षित रहती थीं। इसके विपरीत, अविवाहित कन्याओं को न तो दहेज प्राप्त होता था

और न ही पति से कोई धन, अतः उनका पिता की सम्पत्ति में अपना हिस्सा माँगना स्वाभाविक माना गया। ऋग्वेद में ऐसी कुमारी कन्याओं का उल्लेख मिलता है जो माता-पिता के साथ रहते हुए उनसे पैतृक सम्पत्ति में भाग की अपेक्षा करती हैं। साथ ही, वैदिक संहिताओं में पत्नी को 'परिणाह्य' अर्थात् घर की वस्तुओं की स्वामिनी स्वीकार किया गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि नारी को केवल शिक्षा ही नहीं, बल्कि पारिवारिक और आर्थिक अधिकार भी प्राप्त थे। इस प्रकार वैदिक काल में नारी-शिक्षा के साथ-साथ उसकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति भी सुदृढ़ और सम्मानपूर्ण थी।

वैदिक युग में शिक्षा के क्षेत्र में पुत्र और पुत्री के बीच किसी प्रकार का भेद नहीं था। पुत्र के समान ही पुत्री को भी अध्ययन का पूर्ण अधिकार प्राप्त था और उसकी शिक्षा पर कोई सामाजिक अथवा धार्मिक प्रतिबन्ध नहीं था। शिक्षा-प्राप्ति से पूर्व पुत्री का भी उपनयन संस्कार सम्पन्न किया जाता था और वह ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए विभिन्न विषयों का अध्ययन करती थी। वैदिक नारी न केवल बौद्धिक रूप से सक्षम थी, बल्कि ज्ञान और विवेक के क्षेत्र में अग्रणी मानी जाती थी। वह वेदाध्ययन करती थी और याज्ञिक कर्मकाण्डों में भी सक्रिय सहभागिता निभाती थी।

वैदिक समाज में स्त्रियों की शिक्षा-दीक्षा के आधार पर दो वर्ग माने गए थे—ब्रह्मवादिनी और सद्योद्वाहा। सद्योद्वाहा वे स्त्रियाँ थीं जो शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् विवाह कर गृहस्थ जीवन में प्रविष्ट होती थीं, किन्तु इनके लिए भी विवाहपूर्व ब्रह्मचर्यपूर्वक अध्ययन आवश्यक था। दूसरी ओर ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ नैष्ठिक ब्रह्मचारिणी बनकर आजीवन वेदाध्ययन, साधना और चिन्तन में संलग्न रहती थीं। वे पुरुष ऋषियों के समान ही नियमित अध्ययन करतीं, तपस्या करतीं और मंत्रों का साक्षात्कार करने में समर्थ होती थीं।

ऋग्वेद में अनेक ऐसे सूक्त मिलते हैं जिनकी ऋषि स्त्रियाँ हैं। तपस्विनी ब्रह्मवादिनी घोषा द्वारा ऋग्वेद के दशम मंडल के 39वें और 40वें सूक्तों का दर्शन किया गया। इसी प्रकार रोमशा, विश्ववारा, इन्द्राणी, शची, अपाला और सूर्या जैसी ऋषिकाओं के नाम वैदिक मन्त्रद्रष्टाओं में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अगस्त्य पत्नी लोपामुद्रा ने भी पति के साथ मिलकर सूक्त का साक्षात्कार किया था। ये सभी उदाहरण इस तथ्य को पुष्ट करते हैं कि वैदिक नारी केवल शिष्या नहीं, बल्कि ऋषि-तुल्य ज्ञानद्रष्टा थी।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी स्त्री-शिक्षा पर अत्यन्त बल दिया है। उन्होंने प्राचीन आर्य समाज का स्मरण कराते हुए कहा है कि उस समय स्त्रियाँ उत्कृष्ट रूप से शिक्षित होती थीं, आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करती थीं और सामान्य स्त्रियों का भी उपनयन तथा गुरुकुलवास जैसे संस्कार होते थे। गार्गी, मैत्रेयी, सुलभा और कात्यायनी जैसी विदुषी स्त्रियाँ बड़े-बड़े ऋषियों के दार्शनिक प्रश्नों का समाधान करती थीं। दयानन्द-भाष्य में भी यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि विद्वानों का कर्तव्य है कि वे सभी कुमारों और कुमारियों को पण्डित बनाएं, ताकि वे विद्या के फल को प्राप्त कर सुमति सम्पन्न बनें। इस प्रकार वैदिक परम्परा और दयानन्द-विचार—दोनों में नारी-शिक्षा को समाज की उन्नति का अनिवार्य आधार माना गया है।

वैदिक काल में नारी-शिक्षा की परम्परा अत्यन्त सुदृढ़, व्यापक और सम्मानपूर्ण थी। बालकों के समानान्तर बालिकाओं की शिक्षा का भी विधिवत् प्रबन्ध किया जाता था। वनवासी ऋषियों के आश्रम और गुरुकुल वेद-मंत्रों के उच्चारण से निरन्तर गूँजते रहते थे, जहाँ कन्याएँ निर्भय होकर अध्ययन करती थीं। शिक्षा को जीवन का अनिवार्य और विशिष्ट आधार माना गया था। वैदिक दृष्टि में विद्या को मनुष्य का

'तृतीय नेत्र' कहा गया है, जिसके माध्यम से वह सृष्टि के रहस्यों, जीवन की समस्याओं और धर्म-अधर्म के भेद को समझने में सक्षम बनता है। इसी कारण ऋग्वेद में विद्या को मानव-श्रेष्ठता का मानदण्ड स्वीकार किया गया है। नारी-शिक्षा की इस सुदृढ़ व्यवस्था के कारण ही वैदिक समाज समुन्नत, संतुलित और सुखी दिखाई देता है।

नारी-शिक्षा का प्रत्यक्ष फल यह था कि जैसे पुरुष ऋषियों ने वेदमंत्रों का साक्षात्कार किया, वैसे ही अनेक नारी-ऋषिकाएँ भी मंत्रद्रष्टा बनीं। घोषा, अपाला, रोमशा, विश्वारा आदि ब्रह्मवादिनी स्त्रियों के नाम वैदिक साहित्य में आदरपूर्वक उल्लिखित हैं। इन्हें 'ब्रह्मवादिनी' इसलिए कहा गया, क्योंकि वे वेदाध्ययन, साधना, तप और चिन्तन में पूर्णतः समर्पित थीं। ऋषिका शची पौलोमी के आत्मविश्वासपूर्ण उद्गार, जिनमें वह स्वयं को ज्ञानवती, तेजस्विनी और शत्रुनाशक सामर्थ्य से युक्त बताती हैं, यह प्रमाणित करते हैं कि वैदिक नारी बौद्धिक, नैतिक और आत्मिक दृष्टि से अत्यन्त सशक्त थी तथा पति के साथ समानता के भाव से जीवन जीने की अधिकारी थी।

स्त्रियों को विशेष रूप से वैदिक साहित्य और धार्मिक ज्ञान की शिक्षा प्रदान की जाती थी, जिससे वे यज्ञ, व्रत और अन्य धार्मिक अनुष्ठानों में पति की सहधर्मिणी बन सकें। उपनिषदों में भी नारी-शिक्षा की यह परम्परा उच्च शिखर पर दिखाई देती है। बृहदारण्यक उपनिषद में विदेहराज जनक की सभा में गार्गी और याज्ञवल्क्य के मध्य हुआ शास्त्रार्थ नारी की विलक्षण तर्कशक्ति, मेधा और दार्शनिक गाम्भीर्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसी प्रकार मैत्रेयी का आत्मज्ञान और ब्रह्मविद्या पर केन्द्रित चिन्तन यह सिद्ध करता है कि वैदिक नारी सांसारिक बन्धनों से ऊपर उठकर आध्यात्मिक सत्य की खोज में प्रवृत्त हो सकती थी। यहाँ तक कि विदुषी कन्याओं की प्राप्ति को सौभाग्य मानते हुए विशेष धार्मिक कामनाओं का विधान भी मिलता है, जो नारी-विद्या के सामाजिक आदर्श को दर्शाता है।

शिक्षा के क्षेत्र में स्त्रियाँ केवल अध्ययन करने वाली ही नहीं थीं, बल्कि शिक्षण कार्य में भी सक्रिय थीं। पाणिनि ने अध्यापन करने वाली स्त्रियों को 'आचार्या' और 'उपाध्याया' कहा है तथा महिला-विद्यालयों (छात्रीशालाओं) का भी उल्लेख किया है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र, शांखायन गृह्यसूत्र, कात्यायन के वार्तिक, पतंजलि के महाभाष्य और अमरकोष—इन सभी में स्त्री-शिक्षिकाओं के प्रमाण मिलते हैं। इन ग्रन्थों से यह भी ज्ञात होता है कि अनेक अवसरों पर पुरुष विद्यार्थी भी महिला आचार्यों से अध्ययन करते थे। इससे स्पष्ट है कि वैदिक एवं उत्तरवर्ती कालों में स्त्रियाँ विभिन्न विषयों में विशेषज्ञता रखती थीं और समाज में उन्हें विद्या-प्रसार की महत्वपूर्ण भूमिका सौंपी गई थी।

उपनयन संस्कार नारी-शिक्षा का आधार था। उपनयन का अर्थ है—स्वाध्याय और अध्ययन के लिए आचार्य के समीप जाना। यह संस्कार ब्रह्मचर्याश्रम से जुड़ा हुआ था और वैदिक परम्परा में स्त्रियों के लिए भी मान्य था। इससे यह स्पष्ट होता है कि शिक्षा के द्वार स्त्रियों के लिए पूर्णतः खुले थे। इस प्रकार वैदिक काल में नारी-शिक्षा समानता, गरिमा और अधिकार पर आधारित थी तथा भारतीय समाज की बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति की एक सशक्त आधारशिला थी।

समग्र विवेचन से यह स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि वैदिक काल में नारी की स्थिति अत्यन्त सम्मानपूर्ण, स्वतंत्र और अधिकारसम्पन्न थी। पुत्री को पुत्र के समान पारिवारिक, सामाजिक और सांस्कृतिक महत्त्व प्राप्त था तथा वंश-परम्परा, अर्थव्यवस्था और गृह-व्यवस्था के संचालन में उसका सक्रिय योगदान

स्वीकार किया जाता था। वैदिक समाज में नारी शिक्षा का व्यापक प्रबन्ध था; कन्याओं का उपनयन होता था, वे ब्रह्मचर्य का पालन कर वेद, दर्शन, तर्क और याज्ञिक कर्मकाण्डों का अध्ययन करती थीं। ब्रह्मवादिनी और सद्योद्वाहा—दोनों प्रकार की स्त्रियाँ विद्या-संपन्न थीं और अनेक नारी-ऋषिकाएँ वेदमंत्रों की द्रष्टा बनीं। गार्गी, मैत्रेयी, घोषा, अपाला, लोपामुद्रा आदि उदाहरण नारी की बौद्धिक, आध्यात्मिक और दार्शनिक क्षमता को प्रमाणित करते हैं। नारी केवल शिक्षार्थी ही नहीं, अपितु आचार्या और उपाध्याया के रूप में शिक्षण कार्य भी करती थी। विवाह परिपक्व आयु में, स्वेच्छा और विवेक के आधार पर होता था तथा नारी को आर्थिक अधिकार और स्त्रीधन की स्वामित्व-भावना प्राप्त थी। इस प्रकार वैदिक काल की नारी शिक्षा, सम्मान, स्वतंत्रता और कर्तृत्व की दृष्टि से समाज की केन्द्रीय शक्ति थी और वैदिक सभ्यता की उन्नति, संतुलन एवं आध्यात्मिक चेतना की आधारशिला के रूप में प्रतिष्ठित थी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *अमरनाथ राणा, वैदिक साहित्य में अर्थ-पुरुषार्थ, अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2000*
2. *ऋग्वेद, महर्षि दयानन्द सरस्वती भाष्य सहित, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, 1925*
3. *मनुस्मृति, मेधातिथि भाष्य सहित, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1972*
4. *यास्क, निरुक्त,चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, 1965*
5. *बृहदारण्यक उपनिषद, शंकराचार्य भाष्य सहित, गीताप्रेस, गोरखपुर, 1998*
6. *डॉ. देवेन्द्र कुमार गुप्ता, प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था, न्यू भारतीय बुक कॉर्पोरेशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004*
7. *पाणिनि, अष्टाध्यायी, काशिकावृत्ति सहित, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 1984*
8. *आपस्तम्ब धर्मसूत्र, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1977*
9. *शांखायन गृह्यसूत्र, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1971*
10. *कात्यायन, वार्तिक, चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1982*
11. *पतंजलि, महाभाष्य, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1976*
12. *अमरसिंह, अमरकोष, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1990*
13. *अवदानशतक, सम्पा. राहुल सांकृत्यायन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1956*
14. *मेधातिथि, मनुस्मृति भाष्य, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1972*
15. *अलबरूनी, भारतवर्ष (किताब-उल-हिन्द), अनुवादक - एडवर्ड सखाऊ, केगन पॉल, ट्रेंच, ट्रूबनर एण्ड कम्पनी, लंदन, 1910*
16. *राघवेन्द्र पान्थरी, प्राचीन भारत में सामाजिक परिवर्तन (700 ई.-1000 ई.), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1987*